नईदुनिया

आस्था, उत्तरदायित्व और मीडिया-न्याय

जाँच का विषय कब बन जाता है प्रतीकों का युद्ध?

मनोज श्रीवास्तव

यदि किसी मंदिर, ट्रस्ट या धार्मिक संस्था में आर्थिक अनियमितताओं की आशंका हो तो उसकी जाँच होना न केवल उचित, बल्कि अनिवार्य है। सार्वजनिक धन, सार्वजनिक विश्वास और सार्वजनिक उत्तरदायित्व—तीनों लोकतांत्रिक समाज के मूलाधार हैं। समस्या जाँच में नहीं है; समस्या उस क्षण आरम्भ होती है, जब जाँच न्यायिक प्रक्रिया से निकलकर मीडिया-निर्मित नैतिक रंगमंच में प्रवेश कर जाती है।

वहाँ तथ्य धीरे-धीरे गौण होने लगते हैं और प्रतीक प्रधान हो जाते हैं।

विडम्बना यह है कि जिन लोगों को मंदिर के वित्तीय प्रबन्धन से वास्तविक सरोकार होना चाहिए, वे सबसे कम सुने जाते हैं; और जिनका सरोकार दशकों से मंदिर के तर्क या अस्तित्व के नकार से ही रहा, वे पारदर्शिता के सबसे बड़े पुरोहित बनकर मंच पर अवतरित हो जाते हैं।

यह भारतीय सार्वजनिक जीवन की एक विचित्र नाटकीयता है।

इसे 'सिंबॉलिक ओवरलोडिंग' कहा जा सकता है—जब किसी संस्था पर इतने अर्थ आरोपित कर दिए जाएँ कि वास्तविक प्रश्न उन्हीं अर्थों के नीचे दब जाएँ। मंदिर में यदि कोई आर्थिक प्रश्न उठता है तो उसका उत्तर लेखा-परीक्षा, दस्तावेज़, रसीद और कानूनी प्रक्रिया में खोजा जाना चाहिए। परन्तु भारत का टेलीविजन कैमरा बैलेंस शीट नहीं पढ़ता; वह चेहरे पढ़ता है। उसे अकाउंटिंग नहीं, आक्रोश चाहिए। उसे तथ्य नहीं, फ्रेम चाहिए।

और फ्रेम बन चुका है।

एक ओर वे लोग हैं, जो मानते हैं कि मंदिर पर प्रश्न उठाना स्वयं आस्था पर प्रश्न उठाना है। दूसरी ओर वे लोग हैं, जो किसी भी प्रशासनिक त्रुटि को सम्पूर्ण आन्दोलन की नैतिक पराजय सिद्ध करने पर उतारू हैं।

दोनों पक्षों में एक समानता है।

दोनों को सत्य से अधिक आख्यान प्रिय है।

फ्रांसीसी चिन्तक रोलाँ बार्थ ने लिखा था कि आधुनिक समाज भी मिथक बनाता है—केवल देवताओं के नहीं, बल्कि विचारों और प्रतीकों के। वह मंदिर आधुनिक भारत का एक ऐसा ही मिथकीय-राजनीतिक प्रतीक बन चुका है। इसलिए उसके सम्बन्ध में उठने वाला हर प्रश्न अपनी वास्तविक सीमा से बाहर निकल जाता है।

यदि किसी स्थानीय विद्यालय के ट्रस्ट में अनियमितता का आरोप लगे तो वह विद्यालय-स्तरीय समाचार रहेगा; परन्तु उसी मंदिर में ऐसा आरोप लगे तो वह राष्ट्रीय सांस्कृतिक युद्ध का मोर्चा बन जाता है।

यहीं से विवेक का ह्रास आरम्भ होता है।

इस पूरे प्रसंग का सबसे रोचक पक्ष वह नैतिक रूपान्तरण है, जो सार्वजनिक क्षेत्र में दिखाई देता है। जिन व्यक्तियों या समूहों ने कभी उस आन्दोलन को सांप्रदायिक, प्रतिगामी या अनावश्यक कहा था, वे आज श्रद्धालुओं की भावनाओं के सबसे बड़े संरक्षक के रूप में सामने आते दिखाई देते हैं। यह दृश्य

कुछ वैसा ही है, जैसे किसी शास्त्रीय संगीत समारोह के आजीवन विरोधी अचानक राग दरबारी की शुद्धता पर आँसू बहाने लगें।

भारतीय मीडिया का एक संकट यह भी है कि वह समाचार को न्यायिक प्रक्रिया का विकल्प समझने लगा है। एसआईटी गठित हुई है तो उसका कार्य तथ्य जुटाना है। न्यायालय का कार्य उनका मूल्यांकन करना है। परन्तु हमारे यहाँ शाम आठ बजे का एंकर कई बार स्वयं पुलिस अधिकारी, अभियोजक, न्यायाधीश और दण्डाधिकारी—सभी की भूमिकाएँ एक साथ निभाने लगता है। जिस देश में न्यायालयों को निर्णय देने में वर्षों लगते हैं, वहाँ टेलीविजन स्टूडियो बीस मिनट में नैतिक फाँसी सुना देते हैं और अगले सप्ताह किसी नए विषय की ओर बढ़ जाते हैं। पीछे रह जाता है केवल अविश्वास।

यदि वास्तव में दान के दुरुपयोग की आशंका है तो उसके लिए कठोरतम जाँच होनी चाहिए। यदि आरोप असत्य हैं तो उतनी ही कठोरता से उनका खण्डन होना चाहिए। परन्तु दोनों स्थितियों में केन्द्रबिन्दु संस्था की प्रशासनिक जवाबदेही होनी चाहिए, न कि करोड़ों लोगों की आस्था का सामूहिक अभियोजन।

आस्था कोई बैंक खाता नहीं कि किसी ट्रस्ट की त्रुटि से स्वतः शून्य हो जाए। यदि किसी विश्वविद्यालय में भ्रष्टाचार हो जाए तो ज्ञान की अवधारणा अमान्य नहीं हो जाती। यदि किसी अस्पताल में वित्तीय घोटाला हो जाए तो चिकित्सा-विज्ञान समाप्त नहीं हो जाता। उसी प्रकार यदि किसी धार्मिक संस्था में प्रशासनिक दोष सिद्ध भी हो जाएँ, तो उससे उस धर्म के आध्यात्मिक या सांस्कृतिक मूल्य स्वतः निरस्त नहीं हो जाते।

परन्तु आधुनिक मीडिया का स्वभाव सूक्ष्मता से घबराना है। उसे या तो देवदूत चाहिए या दानव।

मनुष्य उसे स्वीकार नहीं। अन्ततः यह विवाद राममंदिर से अधिक भारत के सार्वजनिक विवेक की परीक्षा है। क्या हम जाँच और निन्दा में अन्तर कर सकते हैं? क्या हम आस्था और प्रशासन को अलग-अलग स्तरों पर समझ सकते हैं? क्या हम किसी संस्था से प्रश्न पूछते समय सम्पूर्ण समुदाय को कठघरे में खड़ा करने की प्रवृत्ति से बच सकते हैं?

क्या हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि किसी धार्मिक संस्था की प्रशासनिक आलोचना और उस धर्म की सांस्कृतिक अस्मिता पर आक्रमण एक ही बात नहीं हैं? और क्या हम मीडिया द्वारा निर्मित नैतिक उन्माद के स्थान पर विधिक प्रक्रिया की प्रतीक्षा करने का धैर्य रखते हैं? यदि उत्तर 'हाँ' है तो यह विवाद भारतीय लोकतंत्र को परिपक्व बनाएगा।

यदि उत्तर 'नहीं' है, तो वही होगा जो आज अक्सर होता है—कुछ लोग उसके नाम पर राजनीति करेंगे, कुछ लोग उसके विरोध के नाम पर राजनीति करेंगे, कुछ लोग पारदर्शिता के नाम पर अवसरवाद करेंगे और कुछ लोग आस्था के नाम पर हर प्रश्न को दबाने की कोशिश करेंगे। शोर सबका होगा।

सत्य किसी कोने में बैठा अपनी बारी की प्रतीक्षा करता रहेगा।

और भारतीय समाज, जो कभी श्रुति और स्मृति की सूक्ष्म परम्पराओं का उत्तराधिकारी था, प्राइम-टाइम की चीखों में यह भूलता जाएगा कि न्याय का पहला नियम निर्णय नहीं, बल्कि परीक्षण है; और आस्था का पहला नियम अन्धता नहीं, बल्कि धैर्य।

इस प्रसंग का वास्तविक प्रश्न शायद यही है—क्या हम मंदिर के बारे में उसके आदर्शों के अनुरूप चर्चा कर सकते हैं, या हम भी उसी कोलाहल का हिस्सा बन चुके हैं, जहाँ हर व्यक्ति अपने-अपने लघु कुरुक्षेत्र में खड़ा है और सत्य की नहीं, केवल अपनी विजय की कामना करता है?

यदि हम इस प्रश्न का उत्तर संतुलित विवेक से खोज सके, तो यह विवाद केवल एक जाँच का विषय नहीं रहेगा, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता का प्रमाण भी बन सकता है। यदि नहीं, तो प्रतीक एक बार फिर तथ्यों पर विजय प्राप्त कर लेंगे, कोलाहल सत्य से अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगा और न्याय की प्रतीक्षा करती हुई समाज की सामूहिक बुद्धि फिर शोर में दब जाएगी।

नारी शक्ति का सम्मानः सर्वोच्च न्यायालय का दूरदर्शी निर्णय

शोभना तिवारी

पहले के जमाने में तो घर में एक ही परिवार में कई बच्चो होते थे। महिलाएं सुबह जल्दी उठकर उन्हें स्कूल के लिए तैयार करती थी उनके लिए लंच बॉक्स बनाती थी और गांवों में तो स्कूल छोड़ने और लेने भी जाती थी। जब त्यौहार आता है तो महिलाओं का काम और भी बढ़ जाता है। जहां घर के सारे लोग मौज-मस्ती में व्यस्त रहते है तो महिलाएं कई तरह के पकवान बनाती है, घर की अच्छी तरह से साफ सफाई करती है, उसे सजाती है। उनकी यही स्थिति तब भी होती है जब घर में कोई रिश्तेदार आ जाता है। इसके बाद भी इनके कार्य की उतनी प्रशंसा नहीं होती जितनी उन्हें मिलनी चाहिए।

भारत वर्ष 2047 तक विकसित देश बनने की राह पर कार्य कर रहा है। जब तक वह महिलाओं को आर्थिक रूप से जीडीपी में शामिल नहीं करेगा, तब तक यह एक सपना ही रहेगा। देश की जीडीपी केवल उन्हीं कार्यों को नापता है, जिसमें पैंसों का लेन देन होता है, लेकिन महिलाएं जो बिना पैसों के लेन देन के घर के कार्य करती है उसकी कीमत नहीं लगता है। आज हम भले ही महिलाओं को समान अवसर दने की बात करते हो, लेकिन सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक उसने द्वारा किए जाने वाले घरेलु काम का मूल्यांकन नहीं करते है। घर में खाना बनाना, बच्चों की परवरिश करना, बुर्जुगों के सेवा करना, घर की साफ सफाई करना, यह काम वह बिना किसी छुट्टी के लगातार करती रहती है। हाल ही में एक महिला की दुर्घटना में मृत्यु के मामले में सुनवाई करते समय सर्वोच्च न्यायालय ने गृहणियों के योगदान को बताया। कोर्ट कहा कि भारतीय महिलाएं 'केवल होम मेकर नहीं, बल्कि नेशन मेकर भी है' राष्ट्र के निर्माण में उनका बहुत बड़ा योगदान रहता है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अगर सड़क दुघर्टना में किसी महिला की मृत्यु हो जाती है तो उसकी काल्पनिक आय तीस हजार रुपये प्रतिमाह मानी जानी चाहिए। इसके अलावा कोई पीड़ित महिला नौकरी भी करती है तो उसकी आय के साथ इन तीस हजार रुपयों को भी जोड़ा जाना चाहिए। इसके अलावा अदालत की बेंच ने कहा कि दुर्घटना के मामले में ऐसी घटनाओं पर फैसला एक साल के अंदर आ जाना चाहिए। कुछ फैसले ऐसे होते है जो समाज की सोच को परिवर्तन करने की क्षमता रखते है और उन मान्यताओं को भी चुनौती देते है जिन्हें लंबे समस से सामान्य मान लिया जाता है। यह फैसला हमारे समाज की सोच पर सवाल उठाता है जिसने कभी भी महिलाओं की घर पर होने वाले श्रम को मान्यता नहीं दी है। अगर पुराने समय की बात करें तो महिलाएं पापड़, आचार, बड़ी घर पर बनाती थी, सारे मसाले चाहे वो हल्दी हो, लाल मिर्च हो घर में पीसती थी, खाने के बाद बर्तन साफ करती थी दोपहर में जब घर के लोग आराम करते थे तो वह घर के सभी सदस्यों के कपड़े धोती थी, उसे सुखाती थी, शाम को उसे उठाती थी और घड़ी करके रखती थी। चूल्हे पर खाना पकाती थी, अनाज आने पर उसे साफ करती थी। आजकल कई इलेक्ट्रिानिक उपकरण आ गए है जैसे वाशिंग मशीन, मिक्सी, फ्रिज इत्यादि जिससे महिलाओं का काम पहले से आसान हो गया है, आजकल ज्यादातर काम बाहर से करवा लिया जाता है, जैसे कपड़ों की ड्राइक्लिनिंग, प्रेस करवाना, आटा पिसवाना पीसे हुए मसले ले आना जिस पर काफी पैसा खर्च होता है, यानि जब यह कार्य महिला घर पर ही करती थी, तब पैसा बचता था। महिलाओं का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है घर के बजट का सीमित आय में प्रबंधन करना और उसमें भी बचत करना। हम जो घर में नौकर रखते है वह भी बीमारी, घर जाना या शादी के नाम पर छुट्टी लेते रहते है, लेकिन घर की महिलाएं साल के 365 दिन घर का काम करती रहती है।

पहले के जमाने में तो घर में एक ही परिवार में कई बच्चे होते थे। महिलाएं सुबह जल्दी उठकर उन्हें स्कूल के लिए तैयार करती थी उनके लिए लंच बॉक्स बनाती थी और गांवों में तो स्कूल छोड़ने और लेने भी जाती थी। जब त्यौहार आता है तो महिलाओं का काम और भी बढ़ जाता है। जहां घर के सारे लोग मौज-मस्ती में व्यस्त रहते है तो महिलाएं कई तरह के पकवान बनाती है, घर की अच्छी तरह से साफ सफाई करती है, उसे सजाती है। उनकी यही स्थिति तब भी होती है जब घर में कोई रिश्तेदार आ जाता है। इसके बाद भी इनके कार्य की उतनी प्रशंसा नहीं होती जितनी उन्हें मिलनी चाहिए। उनसे यह कह दिया जाता है कि तुम दिन भर तो घर में रहती हो और ये तो तुम्हारा काम ही है। महिलाओं को अपनी सेहत के लिए, अपने शौक पूरा करने के लिए समय ही नहीं मिलता है।

अगर महिला नौकरी पेशा हो तो उसके लिए मुसीबत और बढ़ जाती है। पहले दिन भर ऑफिस में नौकरी करो, वहां काम का तनाव सहो और फिर घर आकर खाना भी बनाओ। आजकल के नौकरीपेशा युगल इन्हीं कारणों से जल्दी बच्चे पैदा करने से हिचकिचाते है। नौकरी पेशा महिलाएं कई बार ऑफिस में अच्छा प्रदर्शन इसलिए नहीं कर पाती क्योंकि वह घर की समस्याएं ऑफिस में ले आती है और ऑफिस की घर में। देखा जाए तो आजकल के जेन जी अपने को मल्टीटॉस्कर कहकर गर्व महसूस करते है उन्हें अपने घर में अपनी मां को देखना चाहिए। असल में वो तो शुरू से ही मल्टीटॉस्कर है। नौकरीपेशा महिलाएं कार्यालय में उतना ही काम करती है जितना पुरूष, लेकिन उनका वेतन भी कम ही रहता है। इस फैसले के पहले तक जब घर में एक नौकरीपेशा व्यक्ति की मृत्यु होती थी तो उसकी कमाई को परिवार की आर्थिक क्षति माना जाता था, लेकिन जब एक महिला की मृत्यु होती है तो यह तर्क दिया जाता है कि उसकी कोई आय नहीं थी, इसलिए आर्थिक नुकसान नहीं के बराकर माना जाता था। घर को सक्षम रूप से चलाने वाली महिला का मूल्य उस दिन तय नहीं किया जाना चाहिए जब उसकी कमी खले। हमें यह सोच बदलनी होगी कि हर काम जो वेतन में नहीं बदलता वह मूल्यहीन नहीं होता है। अदालत का यह फैसला सराहनीय है जो गृहणी के कार्यों का सही आकलन करता है, लेकिन यह फैसला सही साबित करना हमारे देश के पुरूषों का काम है।

'न्याय तभी पूर्ण होता है, जब वह समाज के उन योगदान को भी पहचान दे, जो वर्षों तक अनदेखे रहे हो। महिलाओं के प्रति सर्वोच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण न्याय और संवेदनशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण है।'

कर्ज के पहाड़ तले दबा खाद्य प्रबंधन आखिर कब सुधरेगा वित्तीय अनुशासन

मध्यप्रदेश की अर्थव्यवस्था और सार्वजनिक वितरण प्रणाली में खाद्यान्न खरीद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसानों से समर्थन मूल्य पर गेहूं और धान की खरीद कर उन्हें उचित मूल्य दिलाना सरकार की प्रमुख जिम्मेदारी है। इस कार्य के लिए गठित संस्थाओं और निगमों को वित्तीय रूप से सक्षम और पारदर्शी होना चाहिए, ताकि किसानों के हितों की रक्षा के साथ-साथ सार्वजनिक धन का भी समुचित उपयोग हो सके। किंतु जब कोई सरकारी निगम स्वयं भारी कर्ज के बोझ तले दब जाए और उसकी आय से अधिक ब्याज भुगतान होने लगे, तो यह केवल एक संस्था की समस्या नहीं रह जाती, बल्कि पूरे वित्तीय प्रबंधन पर गंभीर प्रश्नचिह्न खड़ा कर देती है।

राज्य में खाद्यान्न खरीद और भंडारण से जुड़ी सबसे महत्वपूर्ण संस्थाओं में शामिल राज्य नागरिक आपूर्ति निगम पर बढ़ता कर्ज चिंता का विषय बन गया है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, निगम पर कर्ज का बोझ एक लाख करोड़ रुपये से अधिक पहुंच चुका है और प्रतिदिन करोड़ों रुपये ब्याज के रूप में चुकाने पड़ रहे हैं। यह स्थिति तब और अधिक गंभीर दिखाई देती है, जब निगम की नियमित आय सीमित हो और ऋण भुगतान का दबाव लगातार बढ़ता जा रहा हो।

किसी भी व्यावसायिक या अर्ध-व्यावसायिक संस्था का मूल सिद्धांत यह होता है कि उसकी आय और व्यय के बीच संतुलन बना रहे। यदि संस्था लगातार ऋण लेकर अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही है, तो यह संकेत है कि उसके वित्तीय ढांचे में कहीं न कहीं संरचनात्मक कमजोरी मौजूद है। खाद्यान्न खरीद का कार्य हर वर्ष नियमित रूप से होता है और इसके लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न वित्तीय व्यवस्थाएं भी की जाती हैं। ऐसे में यह सवाल स्वाभाविक है कि यदि खरीद प्रक्रिया एक स्थापित व्यवस्था के अंतर्गत संचालित हो रही है, तो कर्ज का बोझ इतनी तेजी से क्यों बढ़ रहा है। इस समस्या का एक पक्ष यह भी है कि खाद्यान्न खरीद में बड़ी मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। किसानों को भुगतान तत्काल करना पड़ता है, जबकि केंद्र सरकार अथवा अन्य एजेंसियों से राशि प्राप्त होने में समय लग सकता है। इस अंतर को भरने के लिए निगम बैंक ऋण लेता है। यदि भुगतान में देरी लंबी हो जाए तो ब्याज का बोझ बढ़ना तय है, लेकिन जब यही प्रक्रिया वर्षों तक जारी रहे और ऋण का आकार लगातार बढ़ता जाए, तो यह केवल अस्थायी नकदी संकट नहीं, बल्कि वित्तीय प्रबंधन की चुनौती बन जाती है।

विशेषज्ञों का मानना है कि सरकारी निगमों की सबसे बड़ी समस्या जवाबदेही का अभाव है। निजी क्षेत्र में घाटा होने पर प्रबंधन पर तुरंत दबाव बनता है और सुधारात्मक कदम उठाए जाते हैं, जबकि सरकारी संस्थाओं में अक्सर घाटे और बढ़ते कर्ज को सामान्य प्रशासनिक प्रक्रिया मान लिया जाता है। परिणामस्वरूप समय रहते सुधार नहीं हो पाते और स्थिति विकराल रूप धारण कर लेती है। खाद्यान्न खरीद व्यवस्था में पारदर्शिता भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। अतीत में खरीद दरों, भंडारण व्यवस्था, परिवहन लागत और गुणवत्ता परीक्षण को लेकर समय-समय पर सवाल उठते रहे हैं। यदि खरीद प्रक्रिया में किसी भी स्तर पर अनावश्यक खर्च बढ़ता है, तो उसका सीधा प्रभाव निगम की वित्तीय स्थिति पर पड़ता है। इसलिए केवल ऋण की राशि पर चर्चा पर्याप्त नहीं है, बल्कि यह भी आवश्यक है कि खर्च बढ़ने के वास्तविक कारणों की निष्पक्ष जांच की जाए।

वित्तीय विशेषज्ञ यह भी कहते हैं कि किसी संस्था की सफलता केवल उसके कारोबार के आकार से नहीं, बल्कि उसकी वित्तीय स्थिरता से मापी जाती है। यदि कोई निगम हजारों करोड़ रुपये का कारोबार कर रहा हो, लेकिन उसे लगातार ऋण लेकर काम चलाना पड़ रहा हो, तो उसकी कार्यप्रणाली की समीक्षा आवश्यक हो जाती है। सार्वजनिक धन का उपयोग करते समय पारदर्शिता और दक्षता दोनों अनिवार्य हैं, क्योंकि अंततः यह धन करदाताओं की जेब से ही आता है।

सरकार के लिए यह स्थिति एक चेतावनी भी है। राज्य पर पहले से ही विकास योजनाओं, सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों और बुनियादी ढांचे के विस्तार का वित्तीय दबाव है। ऐसे में यदि सार्वजनिक उपक्रमों का कर्ज लगातार बढ़ता रहेगा, तो उसका प्रभाव राज्य की समग्र वित्तीय स्थिति पर भी पड़ सकता है। ब्याज भुगतान में जाने वाला धन विकास कार्यों के लिए उपलब्ध संसाधनों को सीमित कर देता है।

समाधान की दिशा में सबसे पहले निगम के वित्तीय लेखा-जोखा का स्वतंत्र ऑडिट कराया जाना चाहिए। यह स्पष्ट होना चाहिए कि ऋण वृद्धि के पीछे कौन-कौन से कारण जिम्मेदार हैं और किन क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। साथ ही, खरीद, भुगतान और भंडारण से जुड़ी प्रक्रियाओं को अधिक तकनीक-आधारित और पारदर्शी बनाया जाना चाहिए, ताकि अनावश्यक लागत कम हो सके। केंद्र और राज्य सरकार के बीच भुगतान समन्वय को भी मजबूत करना होगा, जिससे ऋण लेने की आवश्यकता न्यूनतम रहे। इसके अतिरिक्त, निगमों के लिए दीर्घकालिक वित्तीय अनुशासन की नीति तैयार की जानी चाहिए। प्रत्येक वर्ष ऋण सीमा, ब्याज भार और परिचालन लागत की सार्वजनिक समीक्षा हो तथा उसके आधार पर सुधारात्मक कदम उठाए जाएं। जवाबदेही तय किए बिना किसी भी वित्तीय संकट का स्थायी समाधान संभव नहीं है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

माइनस 269 डिग्री पर भारत का 'क्वांटम सपना'...

अमरावती की उपलब्धि से खुलेंगे नई तकनीक और आत्मनिर्भरता के द्वार

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत लगातार नई ऊंचाइयों को छू रहा है। अंतरिक्ष अनुसंधान से लेकर डिजिटल क्रांति तक देश ने अनेक ऐसे कीर्तिमान स्थापित किए हैं, जिन्होंने विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। अब भारत ने एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है, जो भविष्य की तकनीक को नई दिशा देने वाली साबित हो सकती है। आंध्र प्रदेश के अमरावती में वैज्ञानिकों ने माइनस 269 डिग्री सेल्सियस जैसे अत्यंत कम तापमान पर कार्य करने वाली उन्नत प्रयोगशाला और तकनीकी क्षमता विकसित कर देश को क्वांटम युग की ओर एक बड़ा कदम आगे बढ़ाया है।

माइनस 269 डिग्री सेल्सियस का तापमान सामान्य परिस्थितियों की कल्पना से भी परे है। यह तापमान लगभग परम शून्य के निकट माना जाता है, जहां पदार्थों का व्यवहार सामान्य तापमान की तुलना में पूरी तरह बदल जाता है। ऐसी परिस्थितियों में पदार्थों के भीतर छिपे क्वांटम गुण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। यही कारण है कि दुनिया भर में क्वांटम कंप्यूटिंग और उन्नत वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए अत्यधिक निम्न तापमान की आवश्यकता पड़ती है। भारत लंबे समय तक ऐसी जटिल तकनीकों और परीक्षण सुविधाओं के लिए विदेशी संस्थानों पर निर्भर रहा है। उन्नत इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों और वैज्ञानिक प्रणालियों के परीक्षण के लिए विदेशों की प्रयोगशालाओं का सहारा लेना पड़ता था। इससे समय और धन दोनों की हानि होती थी, साथ ही संवेदनशील तकनीकों की गोपनीयता और सुरक्षा से जुड़े प्रश्न भी सामने आते थे। अमरावती में विकसित नई सुविधा ने इस निर्भरता को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

क्वांटम तकनीक को इक्कीसवीं सदी की सबसे क्रांतिकारी तकनीकों में गिना जा रहा है। जिस प्रकार पिछली शताब्दी में कंप्यूटर और इंटरनेट ने दुनिया को बदल दिया था, उसी प्रकार आने वाले वर्षों में क्वांटम कंप्यूटिंग विज्ञान, उद्योग, रक्षा, स्वास्थ्य और संचार के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन ला सकती है। क्वांटम कंप्यूटर पारंपरिक कंप्यूटरों की तुलना में कहीं अधिक तेज गति से जटिल समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होंगे। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डेटा विश्लेषण, मौसम पूर्वानुमान, नई दवाओं की खोज, ऊर्जा क्षेत्र और वित्तीय जोखिम प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में इसके व्यापक

उपयोग की संभावनाएं हैं।

राष्ट्रीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी क्वांटम तकनीक अत्यंत महत्वपूर्ण है। भविष्य के संचार तंत्र को सुरक्षित बनाने में इसकी बड़ी भूमिका होगी। क्वांटम आधारित संचार प्रणालियां ऐसी सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं, जिन्हें भेदना लगभग असंभव माना जाता है। यही कारण है कि अमेरिका, चीन, यूरोप और अन्य विकसित देश इस क्षेत्र में भारी निवेश कर रहे हैं। भारत भी राष्ट्रीय क्वांटम मिशन के माध्यम से इस दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है।

अमरावती की उपलब्धि केवल एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारत की तकनीकी आत्मनिर्भरता का प्रतीक भी है। अत्याधुनिक परीक्षण और अनुसंधान सुविधाएं उपलब्ध होने से नई तकनीकों का विकास देश में ही संभव होगा। इससे विदेशी संस्थानों पर निर्भरता घटेगी, घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा और युवा वैज्ञानिकों को विश्वस्तरीय अनुसंधान का अवसर अपने ही देश में प्राप्त होगा।

इस उपलब्धि का सकारात्मक प्रभाव शिक्षा और उद्योग दोनों पर पड़ेगा। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों को क्वांटम विज्ञान से जुड़े प्रयोगों के बेहतर अवसर मिलेंगे। इलेक्ट्रॉनिक्स, सेमीकंडक्टर, रक्षा उपकरण और दूरसंचार उद्योगों को भी अपने उत्पादों के परीक्षण और विकास के लिए देश में ही सुविधाएं उपलब्ध होंगी। इससे अनुसंधान की लागत घटेगी और नवाचार की गति बढ़ेगी।

हालांकि चुनौतियां अभी भी मौजूद हैं। क्वांटम तकनीक अत्यंत जटिल और महंगी है। इसके लिए उच्च स्तर की विशेषज्ञता और निरंतर निवेश की आवश्यकता होगी। अनुसंधान और उद्योग के बीच बेहतर समन्वय भी आवश्यक है। फिर भी भारत ने अंतरिक्ष मिशनों, डिजिटल भुगतान प्रणाली और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे क्षेत्रों में जिस प्रकार उल्लेखनीय प्रगति की है, वह विश्वास दिलाती है कि देश इस चुनौती का भी सफलतापूर्वक सामना कर सकता है। माइनस 269 डिग्री सेल्सियस पर कार्य करने वाली यह क्षमता भारत की वैज्ञानिक महत्वाकांक्षाओं, आत्मनिर्भरता और तकनीकी भविष्य की नई पहचान है। यदि इस दिशा में निरंतर प्रयास जारी रहे, तो भारत क्वांटम तकनीक के वैश्विक मानचित्र पर एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर सकता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)